बोधकथा

सुनने का महत्व

एक वर्ष तक वनवास का जीवन जीने के बाद युवराज का मन अपने राज्य लौटने को व्याकुल हो उठा। उसे लगता था कि अब वह बहुत कुछ सीख चुका है, परंतु गुरु की आज्ञा के आगे उसका आग्रह ठहर नहीं सका। विवश होकर वह फिर से उसी घने जंगल की ओर चल पड़ा, जहां मौन ही सबसे बड़ा गुरु था। दिन बीतते गए। वृक्षों की सरसराहट, पक्षियों की चहचहाहट और बहती हवा की आवाजें उसे पहले जैसी ही प्रतीत होती रहीं। कोई नवीन अनुभव नहीं, कोई नई अनुभूति नहीं। युवराज के मन में बेचैनी घर करने लगी। क्या यही वह शिक्षा थी, जिसके लिए उसे फिर वन में भेजा गया था?

एक दिन उसने ठान लिया कि अब वह केवल कानों से नहीं, मन से सुनेगा। उसने अपने भीतर के शोर को शांत किया और हर ध्वनि को पूरे ध्यान से ग्रहण करने लगा। तभी एक सुबह, जब जंगल अभी नींद से जाग ही रहा था, उसे कुछ अज्ञात-सी, अत्यंत सूक्ष्म आवाजें सुनाई देने लगीं। ये आवाजें कानों से अधिक आत्मा में उतरती चली गईं। समय के साथ उसकी संवेदनशीलता बढ़ती गई। अब उसे कलियों के खिलने की मूक ध्वनि सुनाई देने लगी। धरती पर उतरती सूर्य-किरणें उसे किसी कोमल राग की तरह प्रतीत होने लगीं। तितलियों की उड़ान में गीत था और घास की पत्तियां सुबह की ओस को ऐसे पीती थीं, मानो प्रकृति स्वयं संवाद कर रही हो। कुछ दिनों बाद युवराज गुरु के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने विनम्रता से कहा, "गुरुदेव, जब तक मैं सतही रूप से सुनता रहा, मुझे कुछ नया नहीं मिला, लेकिन जिस दिन मैंने ध्यान से सुनना सीखा, उस दिन मुझे वह सब सुनाई देने लगा जो शब्दों में नहीं था।"

गुरु मुस्कुराए और बोले, "यही शिक्षा है, जो शासक अनकही पीड़ा को सुन ले, बिना बोले भावनाएं समझ ले, वही सच्चा राजा होता है। अनसुनी आवाजों को सुनने की क्षमता ही जनविश्वास की नींव है।" इससे हमको शिक्षा मिलती है कि सच्चा नेतृत्व आदेश देने से नहीं, संवेदनशील सुनने से जन्म लेता है, जो अनकहे को सुन ले, वही लोगों के दिलों पर राज करता है।

– पंकज शर्मा

शुभ मंगल और कल्याण का प्रतीक
स्वास्तिक

भारतीय संस्कृति में प्रतीकों का बड़ा महत्व है। यह प्रतीक अपने भीतर अनेक रहस्यों को समेटे रहते हैं, लेकिन इनका रहस्य वही जान सकता है, जो संस्कृति के इन प्रतीकों को गहराई से जानता एवं समझता हो। शेष लोगों के लिए प्रतीक केवल प्रतीक जैसे ही होते हैं। भारतीय संस्कृति में 'स्वास्तिक' भी एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। इसे सूर्य का प्रतीक माना जाता है। वैसे भारतीय संस्कृति में स्वास्तिक के अनगिनत आयाम हैं और इसे तरह-तरह से अभिव्यक्त किया गया है। स्वास्तिक का सामान्य अर्थ आर्शीवाद देने वाला, मंगल या पुण्य कार्य करने वाला है। यह शुभ या मांगलिक कार्यो एवं पुण्यकृतियों की स्थापना के रूप में प्रकट किया जाता है।

पं. मनोज कुमार द्विवेदी
ज्योतिषाचार्य, कानपुर

स्वास्तिक का प्रतीक 'ॐ'

स्वास्तिक का अर्थ, ऐसे अस्तित्व से है, जो शुभ भावना से सराबोर हो, कल्याणकारी हो, मंगलमय हो, जहां अशुभता, अमंगल एवं अनिष्ट का लेश मात्र भय न हो। स्वास्तिक का अर्थ है ऐसी सत्ता, जहां केवल कल्याण एवं मंगल की भावना ही निहित हो, जहां औरों के लिए शुभ भावना सन्निहित हो। इसलिए स्वास्तिक को कल्याण की सत्ता और उसके प्रतीक के रूप में निरूपित किया जाता है। विघ्नहर्ता श्रीगणेश जी की प्रतिमा की भी स्वास्तिक चिह्न से संगति है। श्रीगणेश जी के सूड़, हाथ, पैर, सिर आदि अंग इस तरह से चित्रित होते हैं कि यह स्वास्तिक की चार भुजाओं के रूप में प्रतीत होते हैं। 'ॐ' को भी स्वास्तिक का प्रतीक माना जाता है। 'ॐ' ही सृष्टि के सृजन का मूल है, इसमें शक्ति, सामर्थ्य एवं प्राण सन्निहित हैं। ईश्वर के नामों में सर्वोपरि मान्यता इसी अक्षर की है। अत: स्वास्तिक ऐसा प्रतीक है, जो सर्वोपरि भी है और शुभ एवं मंगलदायक भी है।

मंगलाचरण के लिए महत्वपूर्ण है स्वास्तिक

स्वास्तिक को शास्त्रों में शुभ एवं कल्याणकारी बताया गया है। प्राचीन काल में हमारे यहां कोई भी श्रेष्ठ कार्य करने से पूर्व मंगलाचरण लिखने की परंपरा थी। यह मंगलाचरण सभी के लिए लिखना संभव नहीं था, परंतु सभी इस मंगलाचरण का महत्व जानते थे एवं उसका लाभ भी लेना चाहते थे। इसलिए ऋषियों ने स्वास्तिक चिह्न की परिकल्पना की, जिससे सभी के कार्य मंगलप्रद ढंग से संपन्न हो सकें। धार्मिक और मांगलिक कार्यों में वेदी पर चावल आदि से स्वास्तिक को उकेरना मंगलमय माना जाता है।

सकारात्मक ऊर्जा में वृद्धि

स्वास्तिक जहां भी बनाया जाता है, वहां की नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करता है। ब्रह्मांड में सकारात्मक ऊर्जा की धारा को अपनी ओर आकर्षित करने की इसमें अद्भुत क्षमता है। इसी को आधार मानकर स्वास्तिक को अलग-अलग वस्तुओं से बनाया जाता है, जिनके अलग-अलग अर्थ होते हैं। जैसे सिंदूर या अष्टगंध से निर्मित स्वास्तिक शुभ और सात्विक माना जाता है। स्वास्तिक जहां भी होता है, नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करता है और सकारात्मक उर्जा में वृद्धि करता है। इस तरह स्वास्तिक एक श्रेष्ठ एवं मंगलप्रद प्रतीक है, जो सदा कल्याणकारी होता है।

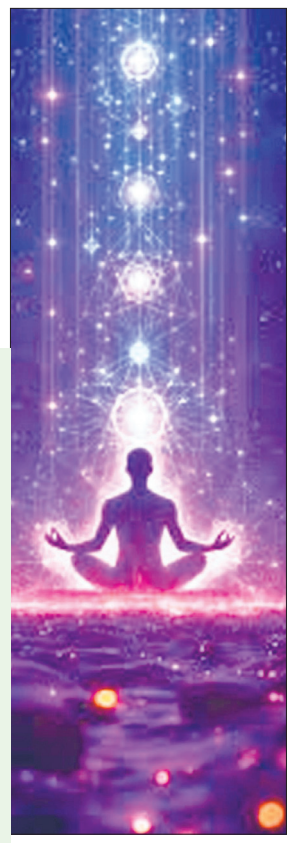

प्राचीन काल से दुनिया की कई संस्कृतियों में प्रमाण

स्वास्तिक को एक प्राचीन वैश्विक प्रतीक भी माना जाता है। हजारों वर्षों से दुनिया की कई संस्कृतियों में इसके प्रमाण मिलते रहे हैं। भारतीय संस्कृति में हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म में स्वास्तिक को सौभाग्य और मंगल का प्रतीक माना गया है। हिंदू धर्म में यह सूर्य, भगवान विष्णु, 'ॐ' और ब्रह्मांड का प्रतीक है। बौद्ध धर्म में बुद्ध के पदचिह्न और जैन धर्म में यह 24 तीर्थंकरों में से एक का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय उपमहाद्वीप में सिंधु घाटी सभ्यता से पहले इसके साक्ष्य मिलते हैं। 3,000 ईसा पूर्व की मोहरों में स्वास्तिक चिह्न पाया गया है। इस प्रकार स्वास्तिक एक सार्वभौमिक प्रतीक है, जो विभिन्न संस्कृतियों में शुभता और कल्याण के लिए उपयोग किया जाता रहा है, जबकि भारत में इसका विशेष आध्यात्मिक महत्व है।

महत्वपूर्ण व्रत

सकट चौथ

दिनांक - 6 जनवरी

पूजा का मुहूर्त- रात 8.54 बजे

धर्मशास्त्रों में उल्लेखित सकट चौथ का व्रत सूर्योदय से चंद्रोदय तक रखा जाता है। कई भक्त निर्जला उपवास करते हैं, जबकि कुछ फलाहार या सात्विक भोजन ग्रहण करते हैं। इसके लिए सुबह स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहनें और व्रत का संकल्प लें। दिन भर भगवान गणेश का स्मरण करें। शाम को विधिवत पूजन के बाद चंद्र दर्शन करें और दूध, जल से अर्घ्य दें। इसके बाद व्रत का पारण करें। निर्जला व्रत कठिन लगे तो फल, दूध या अन्य हल्का सात्विक भोजन ले सकते हैं, लेकिन नमक से परहेज करना चाहिए।

अधिकमास का साल

डॉ. प्रदीप द्विवेदी 'रमण'
आध्यात्मिक लेखक

हिंदी पंचांग के अनुसार 2026 अधिकमास वाला साल है। अधिकमास में आठ साल बाद दो ज्येष्ठ माह होंगे, जबकि पिछली बार अधिमास में दो सावन पड़ थे। इस तरह यह साल 13 माह का रहेगा। इसमें पिछले साल की तुलना में ज्यादातर त्योहारों में बदलाव दिखेगा।

इस साल शुरुआत के छह महीने में त्योहार पिछले साल की तुलना में 10 दिन पहले पड़ेंगे और अगले छह महीने में त्योहार 16 से 19 दिन की देरी से पड़ेंगे। इसलिए इस बार होली 10 दिन पहले चार मार्च को पड़ेगी अर्थात चार मार्च और दीपावली पिछले साल से 17 दिन देरी से यानी आठ नवंबर को मनाई जाएगी। अधिकमास को पुरुषोत्तम मास भी कहते हैं। ज्योतिषीय गणना के अनुसार अधिकमास एक अतिरिक्त चंद्र माह होता है, जो हर तीन साल में सौर कैलेंडर में जोड़ा जाता है। जिस तरह अंग्रेजी कैलेंडर में लीप ईयर होता है, उसी तरह पंचांग में अधिकमास होता है। सौर वर्ष 365 दिन और चंद्र वर्ष 364 दिनों का होता है। ज्योतिष के आधार पर तीन वर्ष में चंद्र और सूर्य वर्ष के बीच आए इन्हीं 11 दिनों के अंतर को खत्म करने के लिए तीन साल में एक बार एक अधिकमास आता है।

ऋषि कश्यप

हमारे ऋषि

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार महर्षि कश्यप को संपूर्ण सृष्टि का मूल सृजक माना गया है। कश्यप केवल एक महापुरुष ही नहीं, बल्कि एक व्यापक गोत्र का नाम भी हैं। परंपरा कहती है कि जिस व्यक्ति का गोत्र ज्ञात न हो, उसका गोत्र कश्यप माना जाता है, क्योंकि समस्त जीव-जगत की उत्पत्ति कश्यप ऋषि से ही हुई मानी गई है।

कश्यप ऋषि से जुड़ी एक प्रसिद्ध कथा परशुराम से संबंधित है। कहा जाता है कि भगवान परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से मुक्त कर संपूर्ण धरती अपने गुरु कश्यप मुनि को दान में दे दी। दान स्वीकार करने के बाद कश्यप मुनि ने परशुराम से कहा- "अब तुम मेरी दी हुई भूमि पर निवास मत करो।" गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए परशुराम ने यह संकल्प लिया कि वे रात्रि में पृथ्वी पर नहीं रहेंगे। प्रतिदिन संध्या होते ही वे अपनी तीव्र गमन शक्ति से महेंद्र पर्वत पर चले जाते थे और प्रातः पुनः लौट आते थे।

महर्षि कश्यप का तेज पिघले हुए स्वर्ण के समान वर्णित है। उनकी जटाएं अग्नि-ज्वालाओं की भांति प्रज्वलित रहती थीं। वे ऋषियों में श्रेष्ठ, नीति और धर्म के परम अनुयायी थे। उनका आश्रम मेरु पर्वत के शिखर पर स्थित था, जहां वे ब्रह्म-तत्व के ध्यान में लीन रहते थे। सुरों और असुरों दोनों के मूल पुरुष के रूप में कश्यप मुनि का उल्लेख अनेक पुराणों में मिलता है। श्री नरसिंह पुराण के अनुसार, कश्यप ऋषि की पत्नियों से उत्पन्न मानस पुत्रों से ही सृष्टि का विस्तार हुआ। इसी कारण वे 'सृष्टि के सृजनकर्ता' कहलाए।

पुराणों में उनकी कुल सत्रह पत्नियों का उल्लेख है, जिनमें से तेरह दक्ष प्रजापति की पुत्रियां थीं। इन पत्नियों ने अपने-अपने स्वभाव और गुणों के अनुरूप विभिन्न संतानों को जन्म दिया।

ऋषि की पत्नी अदिति से बारह आदित्यों का जन्म हुआ, जिनमें भगवान विष्णु का वामन अवतार भी सम्मिलित है। यही अवतार मानव रूप में विष्णु का प्रथम अवतार माना जाता है, जिसे दक्षिण भारत में उपेन्द्र कहा गया। अदिति से हिरण्यकश्यप, हिरण्याक्ष और सिंहिका का भी जन्म हुआ। हिरण्यकश्यप का वध भगवान नरसिंह ने और हिरण्याक्ष का वध वराह अवतार ने किया। दनु से दानवों की उत्पत्ति हुई, अरिष्टा से गंधर्व, सुरभि से गौवंश और विनता से गरुड़ तथा अरुण का जन्म हुआ। गरुड़ विष्णु के वाहन बने और अरुण सूर्यदेव के सारथी। क्रोधवशा से हिंसक जीवों तथा कद्रू से नागवंश की उत्पत्ति मानी गई। इन्हीं नागों के कारण कश्मीर को पुराणों में 'नागों की भूमि' कहा गया है।

सकट व्रत : लोक संस्कृति की पावन परंपरा

भारतीय सनातन संस्कृति में व्रत-पर्वों का अद्वितीय महत्व है। इन्हीं पावन व्रतों में से एक है 'तिलकुटी व्रत' या 'सकट चौथ', जो भगवान गणेश जी को समर्पित है। यह व्रत माघ मास के कृष्ण पक्ष चतुर्थी तिथि को विशेष विधि-विधान से मनाया जाता है। माताएं अपनी संतान की दीर्घायु, सुख-समृद्धि और सर्वांगीण कल्याण के लिए यह व्रत रखती हैं। विघ्नहर्ता गणेश की आराधना से सभी संकटों का निवारण होता है और जीवन में शुभता का संचार होता है। तिलकुटी व्रत को सकट चौथ, संकष्टी चतुर्थी, तिल चतुर्थी और माघी चतुर्थी जैसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। संकष्टी शब्द का अर्थ संकटों को हरने वाला होता है।

भगवान गणेश को संकट हरने वाले देवता के रूप में पूजा जाता है, इसलिए इस व्रत को संकष्टी चतुर्थी कहा जाता है। 'तिलकुटी' नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि इस दिन तिल और गुड़ से बने पदार्थ, विशेषकर तिलकुट्टा या तिल के लड्डू, भगवान गणेश को भोग स्वरूप अर्पित किए जाते हैं। भगवान गणेश को मोदक और लड्डू अत्यंत प्रिय हैं और तिल के लड्डू इस व्रत का मुख्य प्रसाद होते हैं। भगवान गणेश की वंदना से व्रत का शुभारंभ होता है

पौराणिक कथा के अनुसार एक बार देवता अनेक विपत्तियों में घिरे हुए थे। वे सहायता मांगने भगवान शिव के पास गए। उस समय कार्तिकेय और गणेश जी भी वहां उपस्थित थे। भगवान शिव ने पूछा कि कौन देवताओं के कष्टों का निवारण कर सकता है।दोनों पुत्रों ने स्वयं को सक्षम बताया। भगवान शिव ने परीक्षा लेते हुए कहा कि जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके आएगा वही देवताओं की सहायता करेगा। कार्तिकेय तुरंत अपने मोर पर बैठकर निकल पड़े, लेकिन गणेशजी सोच में पड़ गए कि उनके वाहन चूहे पर पूरी पृथ्वी की परिक्रमा में बहुत समय लगेगा। तब बुद्धिमान गणेशजी ने अपने माता-पिता भगवान शिव और माता पार्वती की परिक्रमा की और कहा कि माता-पिता में संपूर्ण ब्रह्मांड समाया है। इससे प्रसन्न होकर भगवान शिव ने गणेशजी को विजयी घोषित किया और आशीर्वाद दिया कि चतुर्थी के दिन जो भक्तिपूर्वक गणेश की पूजा करेगा और रात्रि में चंद्रमा को अर्घ्य देगा, उसके तीनों ताप- दैहिक, दैविक और भौतिक दूर हो जाएंगे।

जयदेव राठी भराण
स्वतंत्र लेखक

एक साहूकार और साहूकारनी थे, जो धर्म-पुण्य में विश्वास नहीं रखते थे। इस कारण उन्हें संतान सुख प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन पड़ोसन सकट चौथ की कहानी सुन रही थी। जब साहूकारनी ने पूछा कि यह क्या है, तो पड़ोसन ने बताया कि इस व्रत से अन्न, धन, सुहाग और संतान की प्राप्ति होती है। साहूकारनी ने मन्नत मांगी कि यदि उसे गर्भ ठहर जाए, तो वह सवा सेर तिलकुट करेगी। उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। फिर उसने पुत्र प्राप्ति के लिए ढाई सेर तिलकुट का संकल्प लिया और उसे पुत्र की प्राप्ति हुई, लेकिन समृद्धि आने पर साहूकारनी व्रत और संकल्प भूल गई। परिणामस्वरूप चौथ माता नाराज हो गईं और उनके पुत्र को संकट में डाल दिया। जब साहूकारनी को अपनी भूल का एहसास हुआ, तो उसने ढाई मन का तिलकुट बनाकर विधिपूर्वक सकट चौथ का व्रत किया। गणेश जी और चौथ माता प्रसन्न हुए और उनके पुत्र को सकुशल घर लौटा दिया। माघ मास में तिल का विशेष महत्व है। तिल से स्नान, होम, दान, भोजन और तिल युक्त जल पान - ये षट्तिल कर्म पापों का नाश करने वाले हैं। माघ मास में तिल दान, तिल तेल से भोजन और तिल से हवन करने वाला परम गति को प्राप्त करता है। तिल के औषधीय गुण अद्भुत हैं - यह शरीर में उष्णता उत्पन्न करता है, कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम का उत्कृष्ट स्रोत है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाता है तथा त्वचा और बालों के लिए लाभकारी है। गुड़ भी ऊर्जा का तत्काल स्रोत है और रक्त शुद्धिकरण में सहायक है। तिल-गुड़ का संयोजन शीतकाल में पूर्ण आहार का कार्य करता है। यह हमारे पूर्वजों की वैज्ञानिक सोच का प्रमाण है।

माताएं अपनी संतान की दीर्घायु, सुख-समृद्धि और निरोगी जीवन के लिए यह व्रत रखती हैं। यह व्रत परिवार में एकता और प्रेम का प्रतीक है। ऐसी मान्यता है कि तिलकुट को पुत्र द्वारा खोलने और भाई-बंधुओं में बांटने से आपसी प्रेम-भावना की वृद्धि होती है। कुछ क्षेत्रों में तिलकुट का बकरा बनाया जाता है जिसकी गर्दन घर का छोटा बच्चा काटता है। बिहार और झारखंड में इसे तिलकुट चौथ, उत्तर प्रदेश में सकट चौथ, राजस्थान में संकष्टी चतुर्थी और महाराष्ट्र में तिल गुड़ घ्या आणि गोड गोड बोला (तिल-गुड़ लो और मीठा बोलो) कहा जाता है।

लोक गीतों में तिलकुटी का विशेष वर्णन मिलता है। बिहार की लोक परंपरा में गाया जाता है: 'माघ मासे के चउथी, करिहैं तिलकुट के पूजा, गणेशा के मनइबै, बिटवा के रक्खइबै' (माघ मास की चौथ पर, करेंगे तिलकुट की पूजा, गणेश को मनाएंगे, बेटे की रक्षा करेंगे)। आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में जब परिवार बिखरते जा रहे हैं, तब तिलकुटी जैसे पर्व परिवार को एक सूत्र में बांधते हैं। यह व्रत हमें अनेक शिक्षाएं देता है।

पौराणिक कथा

तपस्या के साए में जन्मी सवारी

शेर के मां दुर्गा का वाहन बनने की कथा भारतीय पौराणिक परंपरा में तप, त्याग और करुणा की अद्भुत मिसाल है। इस कथा का आरंभ उस समय होता है, जब माता पार्वती भगवान शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वर्षों तक घोर तपस्या में लीन रहती हैं। हिमालय की कठोर जलवायु, एकांत और निरंतर साधना उनके संकल्प को और दृढ़ बना देती है। अंततः उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भोलेनाथ उन्हें अपनी अर्धांगिनी स्वीकार करते हैं। कठोर तपस्या के कारण माता पार्वती का शरीर और रंग रूप बदल जाता है। एक दिन सहज संवाद में भगवान शिव उन्हें "काली" कह देते हैं। यह शब्द माता के मन को गहराई से आहत करता है। आत्मसम्मान और आत्मबोध से प्रेरित होकर वे पुनः वन की ओर प्रस्थान करती हैं और पहले से भी अधिक कठोर तप करने लगती हैं, ताकि वे अपने पूर्ववत गौर स्वरूप को पुनः प्राप्त कर सकें।

उसी वन में एक शेर भटकते-भटकते वहां आ पहुंचता है। देवी को देखकर उसके भीतर उन्हें भोजन बनाने की इच्छा जागती है, पर जैसे ही वह समीप जाता है, माता की तपस्या से उत्पन्न दिव्य तेज उसे रोक देता है। भय और श्रद्धा के मिश्रित भाव से वह हर बार पीछे हट जाता है। दिन बीतते जाते हैं, वर्ष गुजर जाते हैं, पर शेर प्रतीक्षा नहीं छोड़ता। भूखा-प्यासा, वह एक कोने में बैठकर माता के तप पूर्ण होने की बाट जोहता रहता है। अनजाने में वह भी उसी तप का सहभागी बन जाता है।

माता पार्वती की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर अंततः भगवान शिव प्रकट होते हैं और उन्हें वर मांगने को कहते हैं। माता विनम्रता से अपने गौर वर्ण की कामना प्रकट करती हैं। भगवान शिव उनका वरदान पूर्ण करते हैं। स्नान के समय माता के शरीर से कौशिकी देवी का प्राकट्य होता है और तप से उत्पन्न काला रंग विलीन हो जाता है। तभी से माता पार्वती "मां गौरी" के नाम से विख्यात होती हैं। स्नान के उपरांत जब माता वन से बाहर आती हैं, तो उनकी दृष्टि उस शेर पर पड़ती है, जो अब भी भूखा, थका हुआ और शांत भाव से एक ओर बैठा था। उसका धैर्य और प्रतीक्षा माता के हृदय को द्रवित कर देती है। वे भगवान शिव से कहती हैं- "नाथ, जितना तप मैंने किया, उतना ही इस शेर ने भी मेरे साथ सहन किया है। इसने मेरे तप की मर्यादा रखी है।"

माता की करुणा से प्रसन्न होकर भगवान शिव शेर को उनका वाहन बना देते हैं। तभी से माता शेर पर आरूढ़ होकर मां दुर्गा, मां शेरावाली के रूप में पूजित हुईं, जहां शेर शक्ति और साहस का प्रतीक है और माता उस शक्ति की नियंत्रक करुणामयी अधिष्ठात्री।